संयताष्टक

संयत का लक्षण समता है, संयत का जीवन समता है।
जिसमें दशलक्षण गर्भित हैं, साक्षात् धर्म तो समता है ॥टेक॥
विषय वासना से विरहित, निरपेक्ष शुद्ध निश्चल स्वाधीन।
सहजानंदमय परमानंदमय, रहें सहज आतम में लीन॥
मोह क्षोभ से शून्य ज्ञानमय, निज परिणति ही समता है ॥१॥
तत्त्वों का श्रद्धान है सम्यक् ज्ञायक में ही अहं हुआ।
इष्ट-अनिष्ट कल्पना नाशी, निर्मल भेदविज्ञान हुआ॥
सहज तृप्त निष्काम परिणति, किंचित् नहीं विषमता है ॥२॥
परिषहों में चलित न होवें, उपसर्गों में अडिग रहें।
परम जितेन्द्रिय अहो अतीन्द्रिय, ज्ञानानंद में तुष्ट रहें॥
मन-वच-काया में भी जिनको, रही लेश नहीं ममता है ॥३॥
निस्पृह रह शिवमार्ग दिखाते, नहीं भार किंचित् लेते।
अपनी निधि अपने में भोगें, जग की निधि जग को देते॥
पर प्रतिबन्ध निषेधा जिनने, निज में ही अनुबन्धता है ॥४॥

विषय लुब्धता नष्ट हुई है, ज्ञेय लुब्धता नहीं रही।
पर से नहीं प्रयोजन कुछ भी, परिणति निज में लीन हुई॥
सुख यही है शांति यही है, ये ही उदासीनता है ॥५॥
अरे क्षयोपशम न्यूनाधिक हो, चाहे जैसा उदय रहे।
इससे नहीं कुछ अन्तर पड़ता, साधक नित निर्द्वन्द्व रहे॥
धीर- वीर गम्भीर ज्ञानमय, अहो अलौकिक प्रभुता है ॥६॥
जब मोही भोगों में गाफिल, मोह नींद में सोता है।
इष्ट- अनिष्ट कल्पना करके, हसंता है अरु रोता है॥
तब निर्ग्रन्थ संयमी योगी, निजानंद में रमता है ॥७॥
अंतर्दृष्टि रहे सदा ही, सहज ज्ञानधारा वर्ते।
कर्म- कर्मफल से विरक्त हो, आत्मध्यान धारा वर्ते॥
परम साध्य निज में ही पाऊँ, ये ही भाव उमगता है ॥८॥